की देश में कुल उपलब्धि (जो उत्पादन और आयात का जोड़ है) 1960-61 में 5.7 लाख टन थी जो 1970-71 में 16.9 लाख टन तथा 2012-13 में 248.9 लाख टन हो गई। देश में उर्वरकों के उत्पादन में तेज वृद्धि के बावजूद, आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए काफी मात्रा में उर्वरकों का आयात करना पड़ता है। उदाहरण के लिए 1970-71 में उर्वरकों का आयात 629 हजार टन था जो कुल उपभोग का 28.9 प्रतिशत था। 2012-13 में उर्वरकों का आयात 91.6 लाख टन था जो कुल उपभोग का 36 प्रतिशत था।

उर्वरकों की कीमत नीति और आर्थिक सहायता (Fertiliser Pricing Policy and Subsidy)

सरकार की उर्वरकों से सम्बन्धित नीति के दो उद्देश्य रहे हैं : (*i*) किसानों को सस्ते दामों पर उर्वरक उपलब्ध कराना ताकि वे उनके प्रयोग को बढ़ाकर उत्पादकता में वृद्धि कर सकें; तथा (*ii*) उर्वरक उद्योग को लाभकारी प्रतिफल दरें प्रदान करना ताकि इस उद्योग में निवेश बढ़ाया जा सके। पहले उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सरकार पूरे देश मे एक-सी सस्ती दरों पर उर्वरक उपलब्ध कराती रही है और इन दरों को कई वर्षों तक स्थिर रखा गया है। इससे समय के साथ उर्वरकों की मांग में काफी वृद्धि हुई है। जहां तक दूसरे उद्देश्य का सम्बन्ध है, सरकार ने नवम्बर 1977 से उर्वरक प्रतिधारण कीमत (fertiliser retention price) की नीति अपनाई जिसके अधीन उत्पादकों को, पूरे उत्पादन-लागत के ऊपर 12 प्रतिशत कर-उपरान्त लाभ का आश्वासन दिया गया। क्योंकि हर उत्पादक की उत्पादन-लागत अलग-अलग होती है इसलिए हर उत्पादक के लिए प्रतिधारण कीमत भी अलग-अलग थी। इसके अलावा, समय के साथ उत्पादन-लागतों में वृद्धि भी होती रही है। इसलिए प्रतिधारण कीमत को बढ़ाते रहना पड़ा है।

उर्वरकों पर आर्थिक सहायता (Subsidy on Fertilisers) — उर्वरक नीति के ऊपर व्यक्त दो उद्देश्यों के कारण उर्वरकों पर भारी मात्रा में आर्थिक सहायता (subsidy) देनी पड़ी है। इस नीति के तहत जहां एक ओर किसानों को सस्ते व स्थिर दामों पर उर्वरक साल-दर-साल उपलब्ध कराए जाते रहे हैं वहां दूसरी ओर उत्पादन लागतें बढ़ते रहने के कारण, प्रतिधारण कीमत को बढ़ाते रहना पड़ा है। प्रतिधारण कीमत और किसानों से ली जाने वाली कीमत में बढ़ता हुआ अन्तर सरकार को आर्थिक सहायता द्वारा पूरा करना पड़ता है। आयात किए जाने वाले उर्वरकों पर भी आर्थिक सहायता दी जाती है। यह सहायता आयातित माल की कीमत और उर्वरकों की विक्रय कीमत के बीच अन्तर के बराबर है। जैसे-जैसे यह अन्तर बढ़ता गया है, सरकार पर आर्थिक सहायता का भार भी बढ़ता गया है। उदाहरण के लिए उर्वरकों पर आर्थिक सहायता 1980-81 में 505 करोड़ रुपए से बढ़कर 2001-02 में 15,879 करोड़ रुपए तथा 2008-09 में 76,603 करोड़ रुपए हो गई। 2009-10 में उर्वरकों पर आर्थिक सहायता 52,980 करोड़ रुपए तथा 2012-13 में 65,970 करोड़ रुपए थी। वस्तुतः किसान वास्तविक लागत का केवल 25 से 40 प्रतिशत भुगतान करते हैं और शेष लागत सरकार द्वारा सब्सिडी के रूप में वहन की जाती है जिसकी प्रतिपूर्ति (reimbursement) विनिर्माताओं/आयातकों को की जाती है।

उर्वरकों की कीमत में वृद्धि, 1991 (Increase in fertiliser prices, 1991) — उर्वरकों पर भारी आर्थिक सहायता के सरकारी बजट पर अत्यधिक दबाव को कम करने से उद्देश्य से वित्त मन्त्री ने 24 जुलाई, 1991 को पेश किए गए बजट में उर्वरकों की निर्गमन कीमत (issue price) में औसत 40 प्रतिशत की वृद्धि कर दी। इस कीमत वृद्धि पर किसानों तथा विपक्ष के रोष को देखते हुए सरकार ने 14 अगस्त, 1991 से कीमत वृद्धि को 10 प्रतिशत कम कर दिया अर्थात् कीमत वृद्धि 30 प्रतिशत कर दी गई। इसके अलावा, छोटे और सीमान्त किसानों को इस कीमत वृद्धि से मुक्त कर दिया गया। उर्वरकों की कीमत में वृद्धि से किसानों को राहत पहुंचाने के लिए 1991 में घोषित वसूली कीमतों में यथेष्ट वृद्धि की गई।

आंशिक विनियंत्रण की नीति (Policy of partial decontrol) — 20 अगस्त, 1992 को संयुक्त संसदीय समिति की रिपोर्ट प्रस्तुत की गई। इस रिपोर्ट की मुख्य धाराओं को स्वीकार करते हुए सरकार ने 25 अगस्त, 1992 को घोषित नई कीमत नीति में यूरिया की कीमतों में 10 प्रतिशत की कमी कर दी। इसके साथ-साथ सभी फास्फेटी और पोटाशी उर्वरकों के सम्बन्ध में कीमत और संचलन नियंत्रण हटा लिया गए। यूरिया की कीमत में कमी करने के पीछे तर्क यह था सभी किसानों तथा सभी क्षेत्रों में इस उर्वरक की व्यापक मांग है। उदाहरण के लिए 2006-07 में भारत में कुल 220 लाख टन उर्वरकों का उपभोग किया गया जिसमें से नाइट्रोजन-उर्वरक (यूरिया) का हिस्सा 140 लाख टन था (इस वर्ष फास्फेटिक उर्वरकों का प्रयोग 57 लाख टन तथा पोटाशी उर्वरकों का प्रयोग मात्र 23 लाख टन था)। यूरिया सभी छोटे-बड़े किसान प्रयोग करते हैं। इसकी कीमत में 10 प्रतिशत की कटौती से उन्हें काफी राहत मिली।

जहां तक फास्फेटिक तथा पोटाशी उर्वरकों का सम्बन्ध है, समिति ने यह तर्क दिया कि या तो उनका आयात किया जाता है अथवा आयातित कच्चे माल से उनका उत्पादन किया जाता है जिस पर काफी विदेशी मुद्रा खर्च करनी पड़ती है। इसलिए इन उर्वरकों पर भारी आर्थिक सहायता देनी पड़ती है। समिति के अनुसार इनकी कीमत इतनी होनी चाहिए कि इनके 'अभाव' को व्यक्त कर सके। इसलिए समिति ने इन पर से नियंत्रण हटा देने की सिफारिश की जिसे सरकार ने स्वीकार कर लिया। इस प्रकार अब फास्फेटिक और पोटाशी उर्वरकों पर से नियंत्रण हटा लिए गए हैं। अब केवल यूरिया पर ही कीमत नियंत्रण लागू हैं। नई यूरिया कीमत नीति के अन्तर्गत, यूरिया पर आर्थिक सहायता दी जाती है। 1 अप्रैल 2010 से सरकार ने यूरिया की कीमत में 10 प्रतिशत की वृद्धि की है। 1 अप्रैल 2010 से ही सरकार ने पोषण आधारित सहायता योजना (Nutrient Based Subsidy scheme) की शुरुआत की है। NBS नीति के तहत, एक निर्धारित सब्सिडी की घोषणा वार्षिक आधार पर पोषक तत्व के प्रति किलो के आधार पर की जाती है। एक अतिरिक्त सब्सिडी सूक्ष्म पोषक तत्व (micro nutrients) को भी दी जाती है। किसानों को भूमि (soil) और फसल आवश्यकता के आधार पर विभिन्न प्रकार के सब्सिडी प्राप्त उर्वरकों को प्रदान करने के उद्देश्य से सरकार ने NBS के तहत मिश्रित उर्वरकों के सात नए ग्रेडों को शामिल किया है। इस योजना के तहत निर्माताओं/विक्रेताओं को अधिकतम सुरक्षा मूल्य निर्धारित करने की अनुमति है। किसान फास्फेटिक (P) तथा पोटाश (K) उर्वरकों की वितरित लागत का केवल 50 प्रतिशत चुकाते हैं, शेष भारत सरकार द्वारा सब्सिडी के रूप में वहन किया जाता है।

शिक्षक - रवि शंकर राय   विषय - अर्थशास्त्र
दिनांक - 14-07-2020   वर्ग - B-A-II

उत्पादक थे। एक वर्ष के अन्दर ही यह पाया गया कि इन नई किस्म के बीजों से परम्परागत बीजों की तुलना में 25 प्रतिशत से 100 प्रतिशत तक अतिरिक्त उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। स्वाभाविक था कि इन परिणामों से आयोजकों तथा सरकार में खुशी की लहर दौड़ गई और उन्नत किस्म के बीजों को और व्यापक क्षेत्र में बोने का कार्यक्रम बनाया गया। परन्तु क्योंकि इन बीजों को केवल उन्हीं क्षेत्रों में बोया जा सकता है जहां सिंचाई की उपयुक्त सुविधाएं हों इसलिए इस कार्यक्रम को कुछ चुने हुए सिंचाई वाले क्षेत्रों में ही लागू किया गया। 1966-67 में इस कार्यक्रम के अन्तर्गत 18.90 लाख हैक्टर भूमि लाई गई। 1971-72 में यह बढ़कर 181.70 लाख हैक्टर हो गई। 1998-99 में उन्नत किस्मों के अधीन क्षेत्र 783.50 लाख हैक्टर तक पहुंच गया (बाद के वर्षों के लिए आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं)।

उन्नत किस्म के बीजों का उत्पादन बढ़ाने के लिए केन्द्र व राज्य सरकारों तथा पंजीकृत बीज उत्पादकों (registered seed growers) के खेतों को चुना गया। साथ ही भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद, लुधियाना के पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, उत्तर प्रदेश के जी.बी. पन्त कृषि विश्वविद्यालय तथा कई अन्य शोध संस्थाओं में भारतीय जलवायु व परिस्थितियों के अनुकूल नए किस्म के बीज तैयार करने के लिए तथा आयातित बीजों को भारतीय आवश्यकताओं के अनुरूप ढालने के लिए शोध कार्य को प्रोत्साहित किया गया। जहां शुरू-शुरू में देश के चुने हुए क्षेत्रों में मेक्सिको से आयात किए गए गेहूं के बीजों (जैसे लरमा रोजो 64-A तथा सोनारा-64) को सीधे इस्तेमाल किया गया वहां बाद के वर्षों में इन बीजों को भारतीय बीजों के साथ मिलाकर नई किस्में तैयार करने के प्रयास किए गए। इससे कुछ नई किस्मों की खोज हुई। मेक्सिको के बीजों की कमियों को दूर करने के उद्देश्य से (जैसे गेहूं के लाल रंग को समाप्त करने के उद्देश्य से) 'शर्वती सोना' तथा 'पूसा लरमा' जैसी नई किस्में विकसित की गईं।

गेहूं की उन्नत किस्म के बीजों के प्रयोग के लिए उचित मात्रा में जल की आपूर्ति, उर्वरकों तथा कीटनाशक दवाओं की आवश्यकता पड़ती है। इसलिए इस कार्यक्रम को एकमुश्त कार्यक्रम (package programme) के रूप में ही लागू किया जा सकता है। क्योंकि इन बीजों को पानी की काफी जरूरत पड़ती है इसलिए इन्हें केवल उन क्षेत्रों में बोया जा सकता है जहां उपयुक्त मात्रा में सिंचाई सुविधाएं उपलब्ध हों। फिर भी, गेहूं के उन्नत बीजों के अधीन क्षेत्र में लगातार वृद्धि हुई है। 1966-67 में मात्र 5.4 लाख हैक्टर से बढ़कर यह क्षेत्र 1998-99 में 240 लाख हैक्टर तक पहुंच गया। उन्नत किस्म के बीजों के अधीन क्षेत्र में तेज वृद्धि हुई है और 1998-99 में कुल गेहूं अधीन क्षेत्र का 87.2 प्रतिशत उन्नत किस्म के बीजों के अधीन था। (बाद के वर्षों के लिए आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं।)

जिन अन्य फसलों (चावल, ज्वार, बाजरा, मक्का) में उन्नत किस्म के बीजों के कार्यक्रम को अपनाया गया था उनमें विशेष सफलता नहीं मिल पाई है। चावल की उन्नत बीजों के अधीन क्षेत्र 1966-67 में 8.8 लाख हैक्टर से बढ़कर 1975-76 में 124 लाख हैक्टर तथा 1998-99 में 330 लाख हैक्टर तक पहुंच गया। परन्तु चावल अधीन क्षेत्र का लगभग 74 प्रतिशत ही उन्नत किस्मों के अधीन लाया जा सका है। ज्वार, बाजरा और मक्का में भी लगभग सही स्थिति रही है। नई किस्मों के अधीन इन फसलों का कुल क्षेत्र 1966-67 में 4.60 लाख हैक्टर था जो 1971-72 में 29 लाख हैक्टर तथा 1998-99 में 201 लाख हैक्टर तक पहुंच गया। परन्तु जब हम इन फसलों के अधीन कुल क्षेत्र को देखें तो पाएंगे कि केवल 79.4 प्रतिशत क्षेत्र ही उन्नत किस्म के बीजों के अधीन लाया जा सका।

बीजों की उपयुक्त संरक्षण व्यवस्था न होने पर उनकी अंकुरण सामर्थ्य कम हो जाती है जिससे फसल ठीक नहीं होती। अब इस प्रकार के बीजों की खोज कर ली गई है जिनसे वर्ष में कई फसलें तैयार की जा सकती हैं। परन्तु इस प्रकार के बीजों का सन्तोषजनक संग्रहण न होने पर प्रायः वायुमण्डल में नमी होने पर इसमें से अंकुर फूटने लगते हैं। यही कारण है कि चौथी योजना में और इसके बाद की योजनाओं में बीज फार्मों (seed farms) के पास ही उपयुक्त बीज गोदामों के निर्माण करने के कार्यक्रम पर जोर दिया गया। इसके अलावा बीज सुधार के अन्तर्गत बीज प्रौद्योगिकी (technology) पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। विभिन्न किस्म के बीजों के मूल्यांकन के लिए भी परीक्षण किए जा रहे हैं। भारतीय बीज विकास कार्यक्रम में केन्द्रीय तथा राज्य सरकारें, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, राज्यों के कृषि विश्वविद्यालय, सार्वजनिक क्षेत्र, सहकारी क्षेत्र तथा निजी क्षेत्र के संस्थान हिस्सा ले रहे हैं। बीज क्षेत्र में भारत में दो राष्ट्रीय स्तर के निगम (राष्ट्रीय बीज निगम तथा स्टेट फार्मर्स कार्पोरेशन आफ इण्डिया), 13 राज्य बीज निगम तथा 100 बड़ी निजी क्षेत्र की कंपनियां हैं। बीजों के गुण-नियंत्रण (quality control) और प्रमापीकरण (certification) के लिए 22 राज्य बीमा प्रमापीकरण एजेंसियां तथा 101 राज्य बीज निरीक्षण प्रयोगशालाएं हैं। जहां तक उन्नत किस्म के बीजों के वितरण का संबंध है, 1980-81 में 25 लाख क्विंटल उन्नत बीजों का वितरण किया गया जो 2008-09 तक बढ़ते बढ़ते 216 लाख क्विंटल तक पहुंच गया। 2012-13 में उन्नत किस्म के बीजों का अनुमानतः 300.1 लाख क्विंटल वितरण किया गया।

दुर्भाग्यवश, 1960 और 1970 के दशकों में जो उन्नत किस्म के बीजों की क्रान्ति शुरू हुई थी, वह केवल अनाज तक सिमट कर रह गई। कृषि क्षेत्र के कुछ महत्त्वपूर्ण हिस्सों (जैसे दालें, तिलहन, फल व सब्जी इत्यादि) को यह छू तक नहीं पाई। इसलिए अभी भी देश को प्रत्येक वर्ष लगभग 20 लाख टन खाद्य तेलों और 10 लाख टन दालों का आयात करना पड़ता है ताकि घरेलू मांग को पूरा किया जा सके। जब तब इन दो क्षेत्रों में बीज क्रान्ति नहीं होती (और परिणामतः उत्पादकता में वृद्धि नहीं होती) तब तक आयातों पर निर्भरता बढ़ती रहेगी। यह एक गंभीर चिन्ता का विषय है।

बीज क्षेत्र में सुधार
(Seed Sector Reforms)

बीज नीति समीक्षा दल की सिफारिशों के आधार पर, मसौदा बीज अधिनियम तैयार किया गया है। इस विधान की निम्नलिखित विशेषताएं हैं (1) राष्ट्रीय बीज बोर्ड (NSB) की स्थापना। (2) राष्ट्रीय बीज बोर्ड द्वारा स्वीकृत किए जाने के लिए बोने अथवा रोपने के प्रयोजन हेतु किसी बीज व

Ravi Shankar Ray

उर्वरक उपभोग में असंतुलन (Imbalance in fertiliser consumption) – सरकारी कीमत नीति के परिणामस्वरूप उर्वरकों की कीमतों में असंतुलन पैदा हुआ है जिससे इनके प्रयोग में भी असंतुलन बढ़ा है। भारत में नाइट्रोजन (N), फास्फेट (P) तथा पोटाश (K) का आदर्श अनुपात 4 : 2 : 1 था। परन्तु इसके विपरीत, भारत में 1991-92 में इन उर्वरकों के प्रयोग का वास्तविक अनुपात 5.9 : 2.4 : 1 था। आर्थिक विनियंत्रण की नीति से यह अनुपात बिगड़ गया तथा 1993-94 में 9.7 : 2.9 : 1 हो गया। 1996-97 में यह 10.0 : 2.9 : 1 हो गया। इस बिगड़ते अनुपात का अर्थ यह है कि यूरिया का (कीमत कम होने के कारण) आवश्यकता से कहीं अधिक प्रयोग हो रहा है जिसके पर्यावरण संतुलन के लिए गंभीर परिणाम हो सकते हैं तथा भूमि की उर्वरता पर गंभीर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकते हैं। उर्वरकों के उपभोग में संतुलन लाने के लिए आवश्यक है कि यूरिया, फास्फेटिक तथा पोटाशी उर्वरकों की कीमतों में संतुलन लाया जाए। जैसाकि ऊपर कहा गया है, सरकार ने पिछले कुछ समय में इस दिशा में प्रयास किए हैं। इन प्रयासों के परिणामस्वरूप, उर्वरकों के उपभोग में असंतुलन काफी कम हुआ है। N : P : K अनुपात 2007-08 में 5.5 : 2.1 : 1 तथा 2010-11 में 4.7 : 2.3 : 1 हो गया। परन्तु 2012-13 में यह फिर बिगड़ गया तथा 8.2 : 3.2 : 1 हो गया।

उर्वरकों पर आर्थिक सहायता कम करना (Reducing burden of fertiliser subsidies) – जैसाकि आरंभ में ही कहा गया है, उर्वरकों पर आर्थिक सहायता का मुख्य उद्देश्य यह था कि किसान उनका अधिक प्रयोग करें ताकि खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि की जा सके और उचित व सस्ती कीमतों पर जनता की खाद्यान्नों की मांग को पूरा किया जा सके। साथ ही, उर्वरक प्रतिधारण कीमत योजना (Retention Pricing Scheme) के माध्यम से यह भी प्रयास किया गया कि उर्वरक उद्योग को अपने निवेश पर समुचित प्रतिफल प्राप्त हो ताकि इस उद्योग में निवेश को बढ़ाया जा सके। **RPS के कारण उर्वरक उद्योग में काफी निवेश हुआ है। परन्तु RPS के कारण बहुत सी अदक्ष (inefficient) उत्पादन इकाइयों की भी स्थापना हुई है।** इसका कारण यह है कि RPS के तहत उत्पादन इकाई को उत्पादन लागत के ऊपर 12 प्रतिशत प्रतिफल दिए जाने की व्यवस्था थी। इस प्रकार, लागत कम करने की कोई आवश्यकता नहीं थी, न ही उत्पादन की दक्ष तरीकों से करने की जरूरत थी। अदक्ष उत्पादन तकनीकों के परिणामस्वरूप कई उत्पादन इकाइयों की सीमान्त लागत 11,000 रुपए से 12,000 रुपए प्रति टन तक पहुँच गई जबकि आयात लागत महज़ 5,000 रुपए से 6,000 रुपए के बीच थी। इस प्रकार, आत्मनिर्भरता के नाम पर, यूरिया पर दी गई आर्थिक सहायता के कारण कई अदक्ष व उच्च लागतों वाली उत्पादन इकाइयां स्थापित की गई हैं। वस्तुतः आर्थिक सहायता का एक काफी बड़ा हिस्सा उर्वरक उद्योग को मिला है न कि किसानों को। उदाहरण के लिए, अशोक गुलाटी और सुधा नारायण ने अनुमान लगाया है कि 1981-82 से 2000-01 के बीच उर्वरकों पर दी गई कुल सहायता में उर्वरक उद्योग का हिस्सा 92.50 प्रतिशत (या लगभग एक-तिहाई) रहा है।[1] यही कारण है कि सितंबर 2000 में दी गई अपनी रिपोर्ट में व्यय सुधार आयोग (Expenditure Reforms Commission) ने RPS की नीति को समाप्त करने की सिफारिश की थी।

सरकार ने यूरिया के क्षेत्र में नई निवेश नीति (2012) जारी की है जिससे निवेश प्रोत्साहित होगा, यूरिया उत्पादन के क्षेत्र में नई क्षमताएं स्थापित की जा सकेंगी और आयातों पर निर्भरता को कम किया जा सकेगा। फास्फेटिक और पोटेसिक (P&K) उर्वरकों के लिए 2010 में लागू पोषक तत्व आधारित सहायता (Nutrient Based Subsidy) योजना के अधीन वार्षिक आधार पर P&K के प्रत्येक ग्रेड (grade) पर सहायता की एक निश्चित राशि प्रदान की जाती है जो उसमें निहित पोषक तत्व पर आधारित होती है। द्वितीयक (secondary) तथा सूक्ष्म-पोषक तत्वों (micronutrients) को अतिरिक्त सहायता (additional subsidy) भी दी जाती है। इस योजना के अधीन, उत्पादकों/विपणकों को अधिकतम खुदरा मूल्य (maximum retail price) निर्धारित करने की छूट है। वर्तमान में (नवम्बर 2012 में) किसान P&K की सुपुर्दगी लागत (delivered cost) के केवल 58 से 78 प्रतिशत का भुगतान करते हैं, शेष का वहन सरकार सहायता (subsidy) के रूप में करती है।[2]

जहां तक इस तर्क का प्रश्न है कि उर्वरकों से खाद्यान्न उत्पादन बढ़ाने में सहायता मिलती है, अब यह कहा जाने लगा है कि सिंचाई पर निवेश करना बेहतर विकल्प है। जेम्स वी. क्यूज़ोन, कीरत एस. पारिख व एम.एच. सूर्यनारायण, तथा अशोक गुलाटी व प्रदीप के. शर्मा के अध्ययनों से पता चलता है कि खाद्यान्न उत्पादन की लोच, उर्वरकों की अपेक्षा सिंचाई के प्रति कहीं ज्यादा है। इसलिए जहां तक खाद्यान्नों के उत्पादन में वृद्धि का प्रश्न है, उर्वरकों पर आर्थिक सहायता देने की अपेक्षा, सिंचाई व्यवस्था के प्रसार पर और निवेश करना अधिक लाभप्रद सिद्ध हो सकता है। इतना ही नहीं, सिंचाई व्यवस्था के विकास द्वारा छोटे व सीमान्त किसानों को भी अपेक्षाकृत अधिक लाभ मिल सकता है।[3]

उन्नत किस्म के बीज
(HIGH-YIELDING VARIETIES OF SEEDS)

भारत में नई कृषि युक्ति के अन्तर्गत उन्नत किस्म के बीजों के प्रयोग पर बहुत जोर दिया गया है। हालांकि सरकार योजनाकाल के आरम्भ से ही बीजों की किस्म में सुधार के प्रयास करती रही है तथापि इन प्रयासों को सही दिशा तब मिली जब 1966 की खरीफ फसलों के मौसम में नई कृषि युक्ति को अपनाया गया। मेक्सिको से उन्नत किस्म के गेहूं के बीज (जिनकी खोज प्रोफेसर नार्मन बोरलाग व उनके सहयोगियों ने की थी) आयात किए गए और उन्हें देश के उन चुने हुए क्षेत्रों में बोया गया जहां सिंचाई की पर्याप्त सुविधाएं थीं। ये बीज कम अवधि में फसल उत्पन्न करने वाले तथा अधिक

Ravi Shankar Ray

अनिवार्य पंजीकरण। (3) बहु-स्थानीय परीक्षणों (multi-locational trials) के आधार पर नई किस्मों का कम-से-कम तीन मौसमों (seasons) के लिए पंजीकरण मंजूर करना। (4) राष्ट्रीय बीज बोर्ड, ICAR केन्द्रों, राज्य कृषि विश्वविद्यालयों और निजी संगठनों को मान्यता प्रदान करेगा ताकि वे एक निश्चित अवधि के लिए पंजीकरण हेतु उत्पादन के मूल्य (value for cultivation) तथा उपयोग परीक्षणों (use trials) का प्रबंध कर सकें। (5) बीज उत्पादकों और संसाधकों (processors) का पंजीकरण। (6) बीजों का आयात और निर्यात इस अधिनियम के अधीन विनियमित किया जाएगा। (7) बिक्री के लिए बीजों के आयात की अनुमति केवल पंजीकृत किस्मों को दी जाएगी। जो भी व्यक्ति बीजों का आयात करता है या सामग्री (material) का रोपण (planting) करता है, यह घोषणा करेगा कि क्या वह सामग्री पारप्रजतिक परिचालन (transgenic manipulation) का उत्पाद है अथवा उसमें प्रजनन प्रयोग प्रतिबंधित प्रौद्योगिकी (Genetic Use Resource Technology) शामिल है। (8) अपंजीकृत किस्मों के बीजों का आयात केवल अनुसंधान या जांच उद्देश्यों के लिए एक सीमित मात्रा में किया जा सकेगा।

कीटनाशक दवाएं
(PESTICIDES AND INSECTICIDES)

प्रति वर्ष लगभग 10 प्रतिशत फसल की हानि पौध संरक्षण की समुचित व्यवस्था न होने के कारण हो जाती है। कृषि में नवीन तकनीकों के प्रयोग से पौध संरक्षण का महत्व बढ़ गया है। फसलों में भारी निवेश होने पर आर्थिक हानि से बचने के लिए भी पौध संरक्षण की ओर ध्यान देने की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त जब अधिक उपज देने वाले बीजों तथा उर्वरकों के प्रयोग के साथ-साथ गहरी जुताई और सिंचाई की ओर ध्यान दिया जाता है तो पौधों की वृद्धि के साथ-साथ अपतृण अथवा खरपतवार, पौधों में लगने वाले कीटाणु तथा रोग भी बढ़ जाते हैं। आयोजन के आरंभिक काल में कीटनाशक दवाओं का प्रयोग बहुत कम होता था परन्तु 1960 के दशक के मध्य नई कृषि युक्ति को अपनाने के बाद से, इनके प्रयोग में काफी वृद्धि हुई है। 1970-71 में 24.3 हजार टन कीटनाशक दवाओं का प्रयोग किया गया। 2011-12 में 50.58 हजार टन कीटनाशक दवाओं का प्रयोग किया गया। कीटनाशक दवाओं के प्रयोग में फसल-अनुसार बहुत अंतर हैं। वस्तुतः आधे से अधिक कीटनाशक दवाओं का प्रयोग केवल दो फसलों–धान और कपास–पर हो जाता है। कीटनाशक दवाओं को उनके प्रयोग-अनुसार कृमिनाशी (insecticides), फफूंदनाशी (fungicides), शाकनाशी (herbicides) तथा अन्य कीटनाशक दवाओं में वर्गीकृत किया जाता है। भारत में कृमिनाशी दवाओं का प्रयोग अधिकतम है।

कीटनाशक दवाओं का प्रभाव
(Effects of Pesticides)

यद्यपि कीटनाशक दवाओं के प्रयोग के औचित्य से इन्कार नहीं किया जा सकता तथापि इनके प्रयोग से कुछ गम्भीर समस्यायें पैदा हो सकती हैं। पहली बात तो यह है कि कीटनाशक दवाएं जहरीली होती हैं। इसलिए जो जीव उसका सीधा लक्ष्य नहीं हैं वे उन्हें भी मार सकती हैं (इसमें मानव भी शामिल है)। दूसरे, जिन कीटों के विनाश के लिए इन दवाओं का लगातार कुछ समय तक प्रयोग किया जाता है वे कीट धीरे-धीरे इन दवाओं के खिलाफ प्रतिरोधी शक्तियां पैदा कर लेते हैं। पिछले दो दशकों में लगभग एक दर्जन कीटों की किस्में ऐसी हैं जिन्होंने अपने में प्रतिरोधी शक्ति पैदा कर ली है। इसके अलावा, उर्वरकों तथा कीटनाशक दवाओं के सतत् प्रयोग से पौधों में शरीर-क्रियात्मक (physiological) परिवर्तन होते हैं जिससे कई तरह के कीटों की संख्या में वृद्धि होती है। कीटनाशक दवाओं के सही प्रयोग के लिए यह भी जरूरी है कि किसानों का दृष्टिकोण 'वैज्ञानिक' हो। भारत के अधिकतर किसानों में ऐसा दृष्टिकोण नहीं पाया जाता। उन्हें इस बात की जानकारी नहीं होती कि किसी कीट को मारने के लिए दवा की कम-से-कम कितनी मात्रा की जरूरत है। इसलिए वे कई बार अधिक दवाई का प्रयोग करते हैं। अतिरिक्त दवाई पौधों में चिपकी रहती है और पारिस्थितिक (ecological) नुकसान पहुंचाती है। इसलिए अब केवल इस बात पर जोर नहीं दिया जाता कि केवल कीटों का सफाया किया जाये, यह भी कहा जाता है कि कीटनाशक दवाओं व रसायनों का कम-से-कम (पर सही मात्रा में) वैज्ञानिक प्रयोग हो ताकि पारिस्थितिक नुकसान न्यूनतम हो।

आगे आने वाले वर्षों में सरकार की नीति कीटों के नियंत्रण के लिए एक समन्वित कार्यक्रम अपनाने की होगी (इस कार्यक्रम को Integrated Pest Management का नाम दिया गया है)। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत कीड़ों-मकोड़ों पर नियंत्रण पाने के सभी कृषिगत (cultural), यांत्रिक (mechanical), जैविक (biological) तथा रासायनिक (chemical) कदम उठाने की आवश्यकता है। इस कार्यक्रम में कीटनाशक दवाओं के सुरक्षित प्रयोग की जानकारी भी दी जानी चाहिए। रेडियो व टेलीविजन के माध्यम से किसानों को इनके प्रयोग के बारे में प्रशिक्षण देने की भी जरूरत है ताकि इनका अंधाधुंध इस्तेमाल न हो और केवल अपयुक्त मात्रा में ही इनका प्रयोग किया जाए। IPM कार्यक्रम को अपनाने के बाद से कीटनाशक दवाओं के प्रयोग में कमी आई है। 1991-92 में 72.13 हजार टन कीटनाशक दवाओं का प्रयोग हुआ था जो 2012-13 में कम होकर 56.1 हजार टन रह गया।

खेती में मशीनीकरण
(FARM MECHANISATION)

कृषि तथा खेती की प्रक्रिया में मशीनीकरण का अर्थ जमीन पर उन कार्यों के लिए मशीन के इस्तेमाल से है जो परम्परागत खेती में बैलों, घोड़ों और दूसरे भारवाही पशुओं या मनुष्यों के श्रम द्वारा सम्पन्न किए जाते हैं। मशीनीकरण आंशिक और पूर्ण दोनों ही तरह का हो सकता है। जब खेती में पुराने औजारों के साथ-साथ कुछ आधुनिक मशीनों का भी प्रयोग होने लगता है तो मशीनीकरण आंशिक होता है। इसके विपरीत जब पशु-श्रम को पूरी तरह हटाकर मशीनें इस्तेमाल की जाने लगती हैं तो मनुष्य के श्रम की आवश्यकता कम रह जाती है। इस स्थिति में मशीनीकरण पूर्ण होता है।

Ravi Shankar Ray